DSSSB TGT & PGT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
ईशावस्योपनिषद एवं तैत्तिरियोपनिषद
LIVE
31-08-2024 05:00 PM

ईशावस्योपनिषद एवं तैत्तिरियोपनिषद

ईश - स्तुति

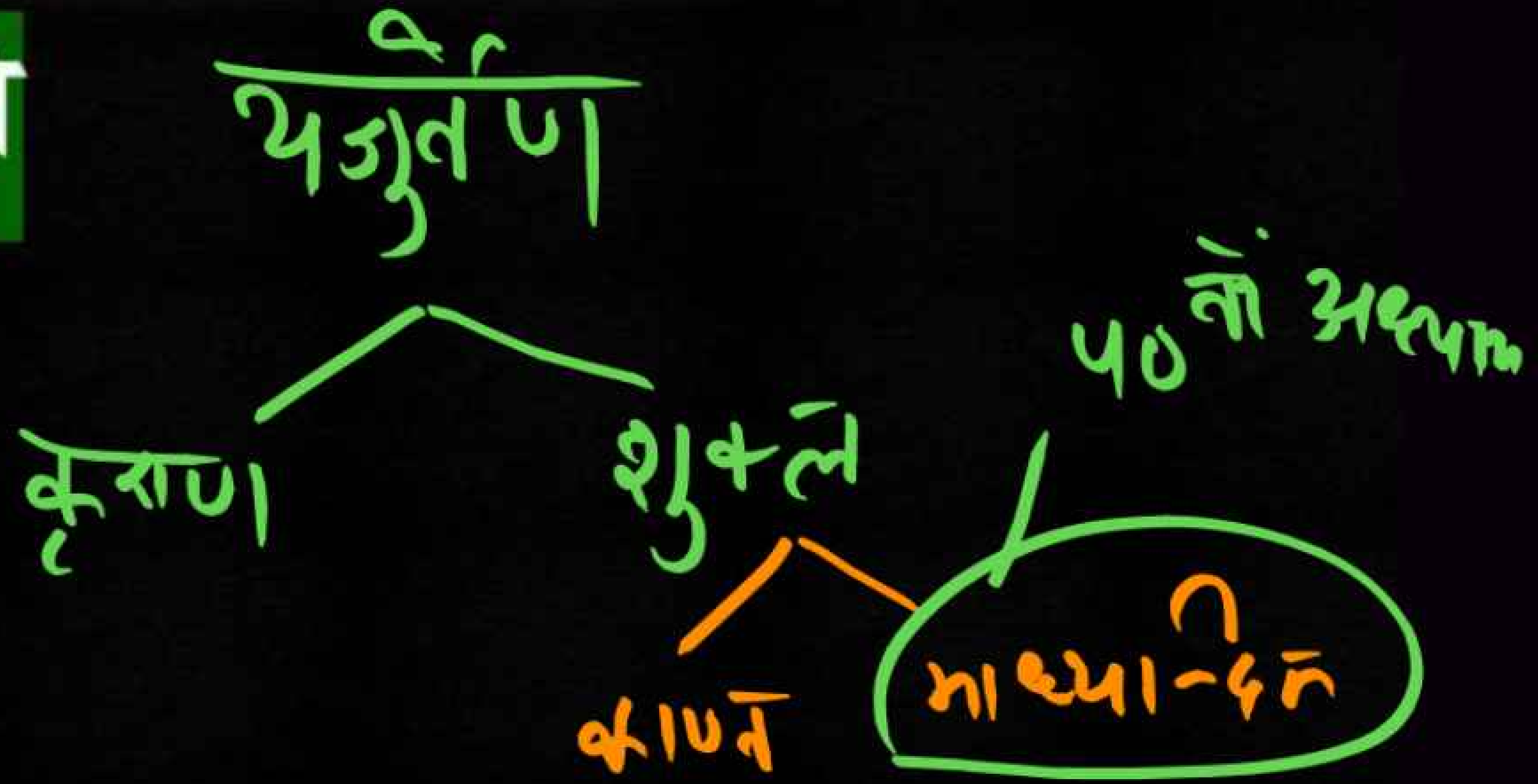

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ - पूर्ण; पूर्णम् - सभी तरह से पूर्ण; अदः वह; पूर्णम् - पूर्ण; इदम् - यह व्यवहार (दृश्य) जगत्; पूर्णात् - पूर्ण से; पूर्णम् - पूर्ण इकाई; उदच्यते - उत्पन्न होता है; पूर्णस्य पूर्ण का; पूर्णम् - पूर्णतः, सब; आदाय - लेने पर; पूर्णम् - पूर्ण संतुलन; एव - ही; अवशिष्यते बचा रहता है।

अनुवाद - भगवान् पूर्ण हैं और चूँकि वे पूरी तरह अखण्ड हैं, अतएव उनके सारे उद्भव, तथा यह व्यवहार जगत्, पूर्ण के रूप में परिपूर्ण हैं। पूर्ण से जो कुछ उत्पन्न होता है वह भी अपने में पूर्ण होता है। चूँकि वे पूर्ण हैं, अतएव उनसे न जाने कितनी पूर्ण इकाइयाँ उद्भूत होती हैं, तो भी वे पूर्ण रहते हैं।

मंत्र – १

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥ १ ॥

ईश - भगवान्; आवास्यम् - नियन्त्रित; इदम् - यह; सर्वम् - सम्पूर्ण; यत् किञ्च - जो भी; जगत्याम् - ब्रह्माण्ड के भीतर; जगत् - जड़-चेतन सब कुछ; तेन उसके द्वारा; त्यक्तेन - पृथक रखा गया भाग; भुञ्जीथा - तुम्हें स्वीकार करना चाहिए; मा - नहीं; गृधः - प्राप्त करने का प्रयास; कस्य स्विद् - अन्य किसी की; धनम् - सम्पत्ति को।

अनुवाद - इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक जड़ और चेतन वस्तु भगवान् द्वारा नियन्त्रित है और उन्हीं की सम्पत्ति है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने लिए केवल उन्हीं वस्तुओं को स्वीकार करे जो आवश्यक हैं और जो उसके भाग के रूप में नियत कर दी गई हैं। मनुष्य को यह जानते हुए कि अन्य वस्तुएँ किसकी हैं, उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिए।

मंत्र - २

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २॥

कुर्वन् - निरन्तर करते हुए; एव- इस प्रकार; इह - इस जीवन काल में; कर्माणि - कर्म; जिजीविषेत्- जीने की इच्छा करे; शतम् - एक सौ: समाः - वर्ष एवम् - इस तरह रहते हुए; त्वयि - तुमको; न - नहीं; अन्यथा - दूसरा, वैकल्पिक; इतः- इस पथ से; अस्ति - है; न - नहीं; कर्म - कर्म; लिप्यते - बाँधा जा सकता है; नरे- मनुष्य को।

अनुवाद - यदि मनुष्य इस प्रकार निरन्तर कार्य करता रहे तो वह सौ वर्षों तक जीने की इच्छा कर सकता है क्योंकि इस प्रकार का कर्म उसे कर्म के नियम से नहीं बाँधेगा। मनुष्य के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

मन्त्र-३

अज्ञान

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।। ३ ।।

असुर्याः - असुरों के निमित्त; नाम - नाम से प्रसिद्ध; ते-वे; लोकाः- लोक; अन्धेन - अज्ञान से; तमसा - अन्धकार से; आवृताः - ढके हुए; तान् - उन लोकों को; ते - वे; प्रेत्य- मृत्यु के बाद; अभिगच्छन्ति - प्रवेश करते हैं; ये - जो कोई; के- हरएक; च - तथा; आत्महनः - आत्मा का हनन करने वाले; जनाः - व्यक्ति ।

अनुवाद - आत्मा का हनन करने वाला, चाहे वह जो भी हो, उन लोकों में प्रवेश करता है जो अश्रद्धा के जगत् के नाम से विख्यात और अन्धकार तथा अज्ञान से पूर्ण है।

मन्त्र -४

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

अनेजत् - स्थिर; एकम् - एक; मनसः मन की अपेक्षा; जवीयः - अधिक तेज; न - नहीं; एनत्- यह परमेश्वर; देवाः - इन्द्र जैसे देवता; आप्नुवन् - पहुँच सकते हैं; पूर्वम् - समक्ष अर्षत्- तेजी से चलते हुए; तत्-वह, धावतः - दौड़ने वालों को; अन्यान्- दूसरे; अत्येति - अतिक्रमण कर जाता है;

तिष्ठत्- एक स्थान पर रहते हुए; तस्मिन् - उसमें; अप:- वर्षा; मातरिश्वा - वायु तथा जल के देवता; दधाति - पूर्ति करते हैं।

अनुवाद - अपने धाम में अचल रहते हुए भी भगवान् मन से अधिक वेगवान हैं और अन्य समस्त धावकों को पछाड़ सकते हैं। शक्तिशाली देवता उन्हें नहीं पा सकते। एक स्थान पर रहकर वे वायु तथा वर्षा की पूर्ति करने वालों को वश में रखते हैं। वे श्रेष्ठता में सबसे आगे हैं।

मन्त्र -५

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

तत् - यह परमेश्वर; एजति - चलता है; तत् - वह; न- नहीं; एजति - चलता है; ; दूरे - काफी दूर; उ - भी; अन्तिके - अत्यन्त निकट; तत् - वह; अन्तः- भीतर; अस्य - इसका; सर्वस्य - सबका; तत् - वह उभी; सर्वस्य - सबका; अस्य- इसका बाह्यतः - बाहर।

अनुवाद - परमेश्वर चलता है और नहीं भी चलता। वह बहुत दूर है लेकिन अत्यन्त निकट भी है। वह सबके भीतर है फिर भी वह सबके बाहर है।

मन्त्र -६

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

यः - जो; तु - लेकिन; सर्वाणि - समस्त भूतानि - जीवों को; आत्मनि - परमेश्वर के सम्बन्ध में; एव - केवल; अनुपश्यति - नियमित ढंग से देखता है; सर्वभूतेषु - समस्त जीवों में; च - तथा; आत्मानम् - परमात्मा को; ततः - तत्पश्चात् न- नहीं; विजुगुप्सते - किसी से घृणा करता है।

अनुवाद - जो प्रत्येक वस्तु को परमेश्वर से सम्बन्धित करके देखता है, जो समस्त जीवों को अपने अंश रूप में देखता है तथा जो परमेश्वर को प्रत्येक वस्तु के भीतर देखता है वह कभी भी किसी वस्तु से या किसी जीव से घृणा नहीं करता।

मन्त्र -७

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

यस्मिन् - जिस स्थिति में; सर्वाणि - सभी भूतानि - जीव; आत्मा - आध्यात्मिक स्फुलिंग; एव - केवल; अभूत् - की तरह विद्यमान; विजानतः - जानने वाले का; तत्र - वहाँ पर; कः - क्या; मोहः - मोह; कः क्या; शोकः शोक; एकत्वम् - गुण की एकता; अनुपश्यतः- प्रमाण के माध्यम से देखने वाले का या उस तरह निरन्तर देखने वाले का।

अनुवाद - जो सदैव समस्त जीवों को आध्यात्मिक स्फुलिंग के रूप में मत्व-
७.२१ भगवान् के ही समान गुण वाला देखता है वही वस्तुओं का असली
ज्ञाता हो जाता है। तो फिर उसके लिए मोह या चिन्ता कैसी?

एकादश अनुवाक

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

वेदम् अनूच्य - वेदका भलीभाँति अध्ययन कराकर; आचार्यः - आचार्य; अन्तेवासिनम्-अपने आश्रममें रहनेवाले ब्रह्मचारी विद्यार्थीको; अनुशास्ति - शिक्षा देता है; सत्यम् वद - तुम सत्य बोलो; धर्मम् चर - धर्मका आचरण करो; स्वाध्यायात् - स्वाध्यायसे; मा प्रमदः - कभी न चूको; आचार्याय - आचार्यके लिये; प्रियम् धनम् - दक्षिणाके रूपमें वाञ्छित धन; आहृत्य - लाकर (दो; फिर उनकी आज्ञासे गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करके); प्रजातन्तुम्-संतान-परम्पराको (चालू रखो, उसका); मा व्यवच्छेत्सीः उच्छेद न करना; सत्यात्- (तुमको) सत्यसे; न प्रमदितव्यम्-कभी नहीं डिगना चाहिये; धर्मात्

धर्मसे; न-नहीं; प्रमदितव्यम् डिगना चाहिये; कुशलात्-शुभ कर्मोंसे; न प्रमदितव्यम्-कभी नहीं चूकना चाहिये; भूत्यै उन्नतिके साधनोंसे; न प्रमदितव्यम् कभी नहीं चूकना चाहिये; स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें; न प्रमदितव्यम्-कभी भूल नहीं करनी चाहिये; देवपितृकार्याभ्याम् देवकार्यसे और पितृकार्यसे; न प्रमदितव्यम् कभी नहीं चूकना चाहिये।

व्याख्या- गृहस्थको अपना जीवन कैसा बनाना चाहिये, यह वात समझानेके लिये इस अनुवाकका आरम्भ किया गया है। आचार्य शिष्यको वेदका भलीभाँति अध्ययन कराकर समावर्तन संस्कारके समय गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके गृहस्थ-धर्मका पालन करनेकी शिक्षा देते हैं- पुत्र ! तुम सदा सत्य-भाषण करना, आपत्ति पड़नेपर भी झूठका कदापि आश्रय न लेना, अपने वर्ण-आश्रमके अनुकूल शास्त्र-सम्मत धर्मका अनुष्ठान करना,